भारतीय पुरालिपियों का उद्भव एवं विकास

कमलरानी
शोधछात्रा
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र हरियाणा

भारत विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। भारतीय प्राचीन ज्ञान सम्पदा को सदियों से निरन्तर प्रवाहमान रखने में पुरालिपियों की अहम भूमिका रही है।प्राचीन काल में ज्ञान को सुरक्षित रखने का मुख्य साधन मौखिक परम्परारूप श्रुति और स्मृति था। हमारे ऋषि-मुनियों के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिष्यों को वेद मन्त्र कण्ठस्थ करायेजाते थे। समय के साथ, जब ज्ञान सामग्री विस्तृत होती गई, तब इसे लिखित रूप में सुरक्षित रखने की आवश्यकता हुई। जिसके कारणवश लिपियों का जन्म हुआ और वही ज्ञान सामग्री इन लिपियों में निबद्ध हुई।

हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि आदि अनेक लिपियों के ज्ञाता थे, जिन्होंने देश-काल-परिस्थिति के अनुसार इन लिपियों के माध्यम से भारत के ज्ञान भण्डार को शिलाखण्ड, ताम्रपत्र आदि पर लिखकर आगामी पीढ़ियों के लिए संरक्षित किया। जैसे-जैसे समय बदलता गया हमारे संसाधन भी बदलते गये जिसका प्रभाव लिपियों पर भी देखने को मिलता है। लिपियों का प्रारम्भिक स्वरुप क्या था, यह आज भी बता पाना असम्भव है क्योंकि बहुत-सी प्राचीन लिपियाँ आज भी अनसुलझी पहेली की तरह है। परन्तु अपने भावों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए समय-समय पर लिपियाँ अपना विकास करती रही जिसके प्रमाणपुरातन गुह्य-चित्रों, भवनों के खण्डहरों, समाधियों तथा अन्य वस्तुएँ जैसे- मृद्भाण्ड, मुद्राएँ आदि उपलब्ध प्राचीन सामग्री से मिलते हैं।इसके अतिरिक्ताम्रपत्र, भोजपत्र, मुद्रालेख, शिलालेख आदि भी लेखनकला के क्रमिक विकास के सूचक हैं।

भारतीय प्राचीन लेखनकला

भारत में प्राचीन समय से लेखन की कला प्रचलित थी इसके प्रमाण वेदों में भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में 'अष्टकर्णी' हजार गायों के दान देने का उल्लेख है। इसमें अष्टकर्णी से यह स्पष्ट है कि गायों के कान पर 8 अंक लिखा होता था। अथर्ववेद में । से 100 तक की गिनती, एक से दश शखं तक की संख्याओं के नाम- एक, शत, सहस्त्र, अयुत, नियत आदि मिलते हैं। इन संख्याओं का ज्ञान लेखनकला के बिना असम्भव है। अथर्ववेद में चार स्थानों पर लिखने की कला का उल्लेख है।

(क) अजैषं त्वा संलिखितम्।(सुलेख)

(ख) यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन।(लेन-देन का लेख)

(ग) अप शीर्षण्यं लिखात्।(ऊपर की रेखाएँ)

(घ) क एषा कर्करीं लिखत्।(चित्रात्मक लेख)

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी लिख् धातु के प्रयोग मिलते हैं- लिखति;लिखते, लिलेख, अलीलिखत्, लेखीः, लिखित, लिख्य। इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय में लेखन का कार्य होता था और किसी नुकीली धातु से अक्षर लिखे या खोदे जाते थे। लिखने के लिए भूमि, पाषाण, स्तम्भ, लकड़ी, वस्त्र आदि का प्रयोग किया जाता था। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में लिपि कर्म उपपद रहते कृ धातु से ट प्रत्यय का विधान किया है। जिससे लिपिकर शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है- 'लिपि को करने वाला'।

इसके अतिरिक्त पाणिनि व्याकरण में यवनों की लिपि को यवनानी कहा गया है। वेदों में छन्दों के पाद और अक्षरों की गणना, लिख् धातु का प्रयोग, संख्याओं आदि का वर्णन इस बात की पुष्टि करता है कि वैदिक काल में यदि लेखनकला प्रचलन में थी तो लिपि की उत्पत्ति हो चुकी थी क्योंकि लिखने के लिए लिपि की आवश्यकता होती है अन्यथा लेखन का कार्य करना सम्भव नहीं होता।

लिपि शब्द का अर्थ एवं क्रमिक विकास - लिपि शब्द संस्कृत के 'लिप्'धातु से 'इन' प्रत्यय के योग द्वारा निष्पन्न हुआ है। आचार्य पाणिनि ने लिप् धातु का प्रयोग 'उपदेह'अर्थ में किया है जिसका अर्थ है- 'शरीर पर रंग या चूर्ण का लेपन।' इससे स्पष्ट होता है कि इनके समय तक लेखन-कला (लिपि) और सौन्दर्य या औषधीय लेपन (उपदेह)- दोनों ही समाज के सांस्कृतिक जीवन का भाग थे। लिपि शब्द का अर्थ बताना एक विचारणीय विषय है क्योंकि धार्मिक कर्म अनुष्ठानों में जमीन को गाय के गोबर से लीपने की बात कही गई है, जिसे 'गोमयलेप' कहते हैं। वहीं दूसरी ओर इसी प्रकार किसी गन्दी या पुरानी दीवार को चूने से 'लेपने' या 'पोतने' की बात भी लोक में प्रचलित है जिसे 'सुधालेप' कहते हैं। प्राचीनकाल में जब लोग कच्चे मकानों या घास-फूँस से बनी झोपड़ियों में रहते थे तब वे अपने घरों को गाय के गोबर तथा मिट्टी-पानी आदि का पतला मिश्रण बनाकर उससे लीपते थे। इसी मिश्रण से घर के दरवाज़े पर कुछ चित्र, बेलबूटे तथा गाय, मोर, बतख आदिपशु-पक्षियों की आकृतियाँ बनायी जाती थी, जिसे मांढना कहा जाता था। यही लीपना या मांढना ही सम्भवत: लिपि का प्राचीनतम स्वरुप रहा होगा। इस प्रकार लिपि शब्द का आशय हो सकता है- अभिप्रायों को वर्णाक्षरों के माध्यम

से फैलाना (जमीन अथवा दीवार को गोबर अथवा चूने के रंग में रंगने के समान) इसलिए लिपि का तात्पर्य 'अभिप्रायों की वर्णात्मक अभिव्यक्ति'को कह सकते हैं। अमरकोषकार ने अक्षर एवं चित्र आदि के परिप्रेक्ष्य में दो नामों द्वारा उल्लेख किया है– लिपि तथा लिबि।

लिपि की उपयोगिता -

प्रारम्भिक काल में मनुष्य ने अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने के लिए संकेतों, चित्रों और प्रतीकों का सहारा लिया। धीरे-धीरे इन प्रतीकों ने एक निश्चित आकार धारण किया जिससे लिपियों का जन्म हुआ। लिपि केवल लिखने का साधन नहीं,बल्कि यह संस्कृति, समाज, इतिहास और ज्ञान-विज्ञान का अमर भण्डार है। लिपि ने भाषा को स्थायित्व प्रदान किया और मौखिक परम्परा से प्राप्त ज्ञान को भविष्य के लिए सरंक्षित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार लिपि न केवल अतीत का गौरवशाली अध्याय है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य को जोड़नेवाला सशक्त माध्यम है। क्योंकि आज के डिजिटल युग में भी लिपियों का महत्व कम नहीं हुआ है। मोबाइल, कम्पयूटर, सोशल मीडिया और ई-लर्निंग प्लेटफार्म पर प्रयुक्त होने वाले अक्षर फॉन्ट्स लिपि का ही आधुनिक स्वरूप है। लिपियों के माध्यम से ही भाषाएँ विश्व स्तर पर संम्वाद कर पा रही हैं। लिपियों का योगदान केवल शिक्षा तक सीमित नहीं है, यह साहित्य, इतिहास, कला, विज्ञान, पुरातत्व और प्रौद्योगिकी के हर क्षेत्र की आधारशिला है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति का आकलन उसकी भाषा व लिपि के विकास से किया जा सकता है। इसलिए लिपियों की उपयोगिता केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

लिपि की उत्पत्ति एवं उसका विकास- भारत में लिपि का प्रादुर्भाव पहली बार कब हुआ? कहाँ हुआ? किस महान् मनीषी ने इसे खोजा?इन प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं मिल पाया है। इसलिए लिपि की उत्पत्ति के विषय में अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है। जिस प्रकार भाषा की उत्पत्ति के विषय में बता पाना कठिन है क्योंकि भाषा अत्यन्त सूक्ष्म है। उसी प्रकार लिपि की उत्पत्ति के विषय में स्पष्टरूप से बता पाना कठिन है, क्योंकि प्रारम्भ में जिन वस्तुओं पर ये लिपियाँ लिखी गई, वे समय के साथ नष्ट हो गई हैं। आरम्भ में मनुष्य ने इस दिशा में जो कुछ भी किया वह यह सोचकर नहीं किया गया था कि उससे लिपि विकसित हो, बल्कि जादू-टोने के लिए कुछ रेखाएँ खींची गयी, या धार्मिक दृष्टि से किसी देवता का चित्र बनाया गया, या सुन्दरता के लिए कन्दराओं की दीवारों पर आस-पास के जीव-जन्तुओं या वनस्पतियों को देखकर उनके टेढे-मेढे चित्र बनाये गये, या स्मरण के लिए किसी रस्सी या पेड़ की छाल आदि में गाँठें लगाई गई। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर समयानुसार विविध

लिपियों का विकास होता चला गया। लिपि के विद्वानों ने चित्रों एवं लकीरों को विकसित कर वर्णाकार प्रदान किया और इन आकृतियों को लिपि नाम दिया गया। फिर धीरे-धीरे विविध भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियाँ बनने लगीं। इस प्रकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पाषाण, स्तम्भ, पत्र आदि पर जो कुछ चीजें लिखी गई वह समय के साथ-साथ लिपि के रुप में विकसित हुई।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'भाषा विज्ञान' पुस्तक में लिपियों के विकास के विषय में यह कहा है कि वर्तमान में लिपि के सम्बन्ध में जो सबसे प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उस आधार पर कहा जा सकता है कि 4000 ई.पू. के मध्य तक लेखन की किसी भी व्यवस्थित पद्धति का कहीं भी विकास नहीं हुआ था और इस प्रकार के प्राचीनतम अव्यवस्थित प्रयास 10000ई.पू. से भी कुछ पूर्व किये गये थे। इस प्रकार, इन्हीं दोनों के बीच, अर्थात् 10000 ई.पू. और४००० ई.पू.के बीच लगभग ६००० वर्षों में धीरे-धीरे लिपि का प्रारम्भिक विकास होता रहा। स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक एवं हर्मन जैकोबी के अनुसन्धान से ज्ञात होता है कि विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ६५०० वर्ष ई.पू. लिखा गया था तो ऐसा माना जा सकता है कि वेदों के रचनाकाल से भी पूर्व लिपि विद्यमान थी।लिपि के निर्माण का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह सम्भवतः इतना पुराना है जितना मानव सभ्यता का विकास। इसलिए लिपि की उत्पत्ति के विषय में प्रारम्भिक लिपि क्या रही होगी और उसका निश्चित समय क्या रहा, यह बता पाना अत्यधिक कठिन है।भारत की उपलब्ध लिपियों में प्राचीनतम लिपि अशोक के समय की ब्राह्मी लिपि है, जिसे पढ़ा जा सकता है। सिन्धुघाटी सभ्यता के अवशेषों में भी ब्राह्मी से पूर्वकालीन कुछ लिपि चिह्न मिले हैं परन्तु वह कौन-सी लिपि है यह कहना कठिन है। इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि लिपि के विकास की मुख्यतया तीन अवस्थाएँ रही हैं- चित्रलिपि, भावलिपि और ध्वनिलिपि।

लिपि विकास के तीन चरण -

लिपि के विकास के मुख्यतया तीन चरणहैं-

(1) चित्रलिपि (2) भावलिपि (3) ध्वनिलिपि

1) चित्रलिपि- यह लिपि का प्राचीनतम रुप था। जिस वस्तु का वर्णन करना होता था, उसका चित्र बना देते थे। पुरुष, स्त्री, आँख आदि के लिए उस जैसा छोटा चित्र बनाया जाता था। व्यक्ति इससे सम्बद्ध भाव समझ जाता था। ये चित्र पत्थर, हड्डी, हाथी-दाँत, सींग, छाल, मिट्टी के पात्रों आदि पर होते थे। मिस्र, मेसोपोटामिया, स्पेन, अमेरिका, चीन तथा भारत में इसके प्राचीन अवशेष उपलब्ध है। वर्तमान में चीन की लिपि चित्रलिपि का ही एक जीवन्त उदाहरण है।

2) भावलिपि- यह लिपि विकास का दूसरा चरण कहा जा सकता है। इस लिपि में प्रयुक्त चित्र सिर्फ वस्तु विशेष के बोधक न रहकर वस्तुओं में छिपे सूक्ष्म भावों के भी प्रतीक बनने लगे। इस प्रकार चित्रों के माध्यम से भावमूलक लिपि का विकास हुआ। यथा वृत्त का तात्पर्य मात्र सूर्य ही नहीं बल्कि ताप, प्रकाश, दिन आदि समझा जाने लगा। दुःख के बोध के लिए आँख से गिरते हुए आसूँ की बूँद का प्रयोग होने लगा। उसी प्रकार चलने के लिए पैरों की आकृति बना दी जाती थी। इस प्रकार की लिपि भारत में सिन्धुघाटी सभ्यता की मुद्राओं पर प्राप्त होती है। उत्तर अमेरिका, चीन,अफ्रीका आदि में भी इसके अवशेष मिलते हैं।

3) ध्वनिलिपि- यह लिपि विकास का तृतीय चरण था। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए कुछ संकेत निर्धारित किए गए थे। इसमें मुख से उच्चारित प्रत्येक ध्वनि को लिपिबद्ध किया जा सकता था। देश-काल के भेद से ये ध्वनिलिपियाँ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न विकसित हुई। ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि प्राचीन लिपियाँ इसका ही उदाहरणहै।

ब्राह्मी लिपि का स्वरूप- ब्राह्मी लिपिभारत की सबसे प्राचीन लिपि है। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के विषय में बहुत विवाद है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति फोनीशी लिपि, सामी लिपि या चीनी लिपि से माना है। जबकि भारतीय विद्वानों ने इसकी भारतीय उत्पत्ति मानी है। विचार करने से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानों के मत अत्यन्त अपुष्ट आधारों पर हैं। हिन्दुस्तान में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक इस लिपि में लिखे हुए लेख आज भी विद्यमान हैं, जो इसकी सर्वदेश व्यापकता के परिचायक हैं। यह प्रमाणित भी हो चुका है कि ब्राह्मी समस्त भारतवर्ष में उन दिनों एक मात्र लिपि थी जो पढ़ी व लिखी जाती थी। विद्वानों का यह भी मत है कि आज भारत की जितनी भी आधुनिक लिपियाँ है वे सभी ब्राह्मी की पुत्रियाँ हैं। इसलिए ब्राह्मी लिपि पूर्णतया भारतीय लिपि है। इसके प्राचीनतम लेख 350 ई०पू० से 300 ई० तक मिलते हैं। सबसे प्राचीन लेख 'एरण' से प्राप्त सिक्का है, जो ३५० ई०पू० का है। इसके पश्चात् अशोक के शिलालेख और स्तम्भ लेख आदि हैं जिनका समय २५०ई०पू० है। ई०सन् १९३५-३७में इस लिपि को सर्वप्रथम पढ़ने का श्रेय पाश्चात्य पुरातत्त्वविद सर-जॉन-प्रिंसेप को जाता है, जिसने दस वर्ष तक अथक प्रयास कर आखिरकार इस लिपि के सभी अक्षरों को पढ़ने में सफलता प्राप्त की थी। इसमें कुल ४१अक्षर थे- ९ स्वर और ३२ व्यञ्जन। यह लिपि बायें से दायें लिखी जाती थी। इसमें शिरोरेखा का प्रयोग नहीं होता था। वैदिक-जैन-बौद्ध आदि धर्मग्रन्थों का लेखन सर्वप्रथम इसी लिपि में हुआ और इसे अन्य लिपियों की तुलना में अग्रक्रम में रखा गया।

खरोष्ठी लिपि का स्वरूप- भारत का बौद्ध धर्म कश्मीर के रास्ते चीन, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों मे गया। भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों से लेकर काफी आगे तक खरोष्ठी लिपि का प्रभाव उन दिनों था। दूसरी शताब्दी के आस-पास बौद्ध धर्म का प्रचार इन स्थानों पर आरम्भ हुआ। तब से लेकर प्रायः 5वीं शताब्दी तक पाली तथा प्राकृत के बौद्धग्रन्थ जो मूलतः ब्राह्मी लिपि में निबद्ध थे, खरोष्ठी में वहाँ के बौद्ध भिक्षुओं द्वारा लिप्यन्तरित किए गए। कश्मीर से लेकर पाकिस्तान, अफगानिस्तान होते हुए सुदूर मध्य एशिया तक के इस विशाल भूभाग में फैले अनेक बौद्ध मठों के अवशेषों से खरोष्ठी लिपि में निबद्ध असंख्य बौद्धग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं।यह लिपि भारतीय मूल की नहीं है क्योंकि भारतीय मूल की सभी लिपियाँ बाईं से दाईं ओर लिखी जाती है। परन्तु खरोष्ठी उर्दू की भांति दाएं से बाएं की तरफ लिखी जाती थी। विद्वानों का मत है कि इस लिपि का विकास अरमायक (जिसका विकास उत्तरी सेमेटिक वर्ग की फिनिशियन लिपि से ई०पू० १०वीं शताब्दी के आस-पास हुआ) लिपि से हुआ। खरोष्ठी लिपि में ३७ वर्ण हैं- ५ स्वर और ३२ व्यञ्जन। इसमें दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, ऐ, औ और ङ व्यञ्जन नहीं है।खरोष्ठी लिपि के सबसे प्राचीन अभिलेख सम्राट् अशोक के मिलते हैं।इससे प्राचीन कोई अभिलेख खरोष्ठी में नहीं प्राप्त होता है। अशोक के खरोष्ठी अभिलेख शाहबाजगढ़ी (जिला यूसुफजई, पंजाब) और मानसेरा (जिला हजारा, पंजाब) में प्राप्त हुए हैं।प्रो०ब्यूलर के मतानुसार खरोष्ठी के अभिलेख ३५० ई० पू० से २०० ई० तक मिलते हैं।अशोक के शिलालेखों के अतिरिक्त भारत-यूनानी सिक्के, शक और कुषाणों के अभिलेख भी खरोष्ठी लिपिमें हैं जिन्हें पढ़ने में पुरातत्त्वविद प्रयासरत हैं लेकिन ब्राह्मी जैसी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

ग्रन्थ लिपि का स्वरूप- इस लिपि का आविष्कार छठी शताब्दी के अन्त में कांची के ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। कालान्तर में ब्राह्मी लिपि के दो प्रवाह हुए- एक उत्तरी ब्राह्मी तथा दूसरा दक्षिणी ब्राह्मी। उत्तरी ब्राह्मी से शारदा, गुरुमुखी, प्राचीन नागरी, मैथिली, नेवारी, बंगला, उडिया, गुजराती आदि विविध लिपियों का विकास हुआ। जबकि दक्षिणी ब्राह्मी से दक्षिण भारत की मध्यकालीन तथा आधुनिक कालीन लिपियाँ अर्थात् तमिल, नन्दीनागरी, तेलुगु, मलयालम, ग्रन्थ, कन्नड़, पश्चिमी तथा मध्यप्रदेशी आदि लिपियों का विकास हुआ। इसका चलन विशेषरूप से दक्षिण भारत के मद्रास रियासत, तमिलनाडु व सीमावर्ती कर्नाटक, केरला, आन्ध्रप्रदेश आदिप्रदेशों में अधिक रहा। ग्रन्थ लिपि ताड़पत्रों पर लिखने के लिए सबसे उपयुक्त लिपि मानी गई है। यह लिपि ताड़पत्र पर शिलालेख, ताम्रलेख आदि की तरह नुकीली कील द्वारा खोदकर लिखी जाती थी। तत्पश्चात्, उन अक्षरों में काली स्याही भरने अथवा पोतने का विधान था। उड़िया, तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ लिपि की गोल-गोल (वर्तुलाकार) आकृतियों को देखकर यह सहज रूप से विश्वास नहीं हो पाता कि ये लिपियां भी ब्राह्मी की पुत्रियां हैं तथा कोणाकार आकृति वाली बंगाली, मैथिली, देवनागरी, शारदा जैसी लिपियों की

बहिनें हैं। विद्वानों ने इसका कारण ताड़पत्र को माना है। उनका कहना है कि यदि वर्ण की शिरोरेखा के रूप में ताड़पत्रों पर लम्बी सीधी रेखा अंकित की जाए तो ताड़पत्र फट सकता है। अतः दक्षिणी लिपिकारों ने (उड़िया, तेलुगू, तमिल, कन्नड़ के लिपिकारों ने) वर्णों की शिरोरेखाओं को वर्तुलाकृति दे दी है ताकि सरलतापूर्वक इन वर्णों का अंकन ताड़पत्रों पर हो सके।ग्रन्थ लिपि का निर्माण दक्षिण भारत में संस्कृत, प्राकृत व पाली के ग्रन्थ लिखने के लिए हुआ। क्योंकि वहाँ प्रचलित तामिळ लिपि में अक्षरों की न्यूनता के कारण संस्कृत भाषा लिखी नहीं जा सकती थी।प्राचीन तामिळ लिपि में सिर्फ अठारह व्यञ्जन वर्णों का चलन था, जिनसे तामिळ भाषा का साहित्य तो लिखा जा सकता था लेकिन संस्कृत भाषाबद्ध साहित्य लिखना सम्भव नहीं था। अतः संस्कृत के ग्रन्थ लिखने के लिए इस लिपि का आविष्कार हुआ।यह लिपि ब्राह्मी तथा अन्य भारतीय लिपियों की तरह बायें से दायें लिखी जाती है। इस लिपि की वर्णमाला ब्राह्मी लिपि की वर्ण-माला के समान ही है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि, अन्य दक्षिणी लिपियों (तेलुगु और कन्नड) ने अपनी वर्णमाला का विकास ब्राह्मी लिपि की वर्णमाला के अनुसार ही किया है।

शारदा लिपि का स्वरूप- शारदा लिपि मूलतः काश्मीर-क्षेत्र में प्रचलित थी। इसका उद्भव लगभग छठी शताब्दी के उत्तरार्ध से आठवीं सदी के अन्तराल में गुप्तकालीन उत्तर ब्राह्मी तथा कुटिल लिपियों से हुआ। इस लिपि का चलन मुख्यत: अफगानिस्तान, गान्धार, पाकिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी भाग, लद्दाख, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा एवं दिल्ली के क्षेत्रों में रहा है। इन सभी प्रदेशों से प्राप्त शारदा लिपिबद्ध शिलालेख एवं विविध ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ इसके प्रमुख साक्ष्य हैं।यह लिपि अत्यन्त सुन्दर और पूर्ण विकसित लिपि है। इस लिपि का प्रयोग तत्कालीन मुद्राओं में भी खूब हुआ है। काश्मीर के संग्रहालय में शारदा लिपिबद्ध राजकीय प्राचीन मुद्राओं का अपार कोश विद्यमान है। यह लिपि विशेषरूप से काश्मीर में विकसित हुई। यहाँ प्राय: समस्त संस्कृत वाङ्मय शारदा लिपि में ही लिखा गया। हिन्दुस्तान के ग्रन्थागारों में आज भी शारदा लिपिबद्ध हस्तप्रतों की संख्या लगभग एक लाख से अधिक है। विदेशी भण्डारों में भी कछ प्रतियाँ होने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इस लिपि में निबद्ध हस्तप्रतें पाठ शुद्धता की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। आज इस लिपि के दो भिन्न रूप मिलते हैं-

(क) जम्मू-काश्मीर क्षेत्र की शारदालिपि । (ख) गिल्गित-क्षेत्र की शारदा लिपि।

शारदा लिपि के समकालीन या कुछ उत्तरवर्ती लिपि देवनागरी है। देवनागरी को शारदा लिपि की लघु भगिनी कहा जा सकता है क्योंकि दोनों में वर्णविन्यास एवं लेखनपरम्परा की दृष्टि से आपसी साम्य दिखाई पड़ता

है। कालान्तर में शारदा सिर्फ काश्मीर तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों तक ही सीमित रही जबकि नागरी लिपि धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रयुक्त होने लगी।टाकरी, डोगरी, गुरुमुखी, पण्डवानी, चन्दवानी, भटाक्षरी, पाबुची, महाजनी तथा तिब्बत भोट लिपि भी शारदा लिपि से ही विकसित हुई हैं। परन्तु आज शारदा लिपि का चलन भारत में पूर्णतः बन्द हो चुका है। यह लिपि भी ब्राह्मी, नागरी, तथा अन्य लिपियों की तरह ही बायें से दायें लिखी जाती हैं। इसमें कुल ४५ वर्ण- १२ स्वर और ३३ व्यञ्जन है।

प्राचीन नागरी लिपि का स्वरूप- नागरी लिपि हिन्दुस्तान की पुरातन लिपियों में से एक है। इसका उद्भव लगभग आठवीं-नवमी सदी में ब्राह्मी लिपि से हुआ। लगभग नवमी सदी के पूर्वार्ध में एक ओर दक्षिणी भारत में ग्रन्थ लिपि से नन्दीनागरी लिपि का उद्भव हुआ तो दूसरी ओर उसी समय उत्तरी भारत में कुटिल एवं शारदा लिपियों से नागरी लिपि (जिसका प्राचीनतम रूप कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजा महेन्द्रपाल प्रथम (वि.सं. ११४ई.) के एक दानपात्र मेंमिलता है)का उदय हुआ।यह लिपि अपनी विशेषताओं के कारण एक समर्थ एवं पूर्णतः वैज्ञानिक लिपि के रूप में विकसित होने लगी और देखते ही देखते समग्र उत्तर-मध्य भारत में फैल गई।शिलाखण्डों, लोहपत्रों, ताडपत्रों, हस्तनिर्मित कागज एवं कपडा आदि पर राजप्रशस्तियाँ तथा सम्पूर्ण साहित्य भी इसी लिपि में लिपिबद्ध किया जाने लगा; जो आज हमारे ग्रन्थागारों में पाण्डुलिपियों के रूप में संरक्षित है।इसमें 33 मूल व्यंजन और 14 मूल स्वर माने जाते थे, जिससे कुल संख्या 47 होती थी।आज हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि देश-विदेश का शायद ही कोई ऐसा ग्रन्थागार होगा जहाँ प्राचीन नागरी लिपिबद्ध पाण्डुलिपियाँ संगृहीत न हों।जबसे इस लिपि का उदय हुआ तबसे ही यह निरन्तर प्रगतिपथ पर गतिशील है। कालान्तर में देश-काल-परिस्थिति अनुसार परिवर्तित होते-होते आज हमें आधुनिक देवनागरी लिपि के रूप में प्राप्त होती है, जो वर्तमान में भारत की 'राष्ट्रीय लिपि' है।

उपसंहार- भारतीय प्राचीन लिपियों का इतिहास केवल लेखन-कला का विकास नहीं है, बल्कि यह हमारे सांस्कृतिक ओर बौद्धिक उत्कर्ष की गाथा भी है। चित्रलिपि से लेकर देवनागरी तक की यह यात्रा इस बात की साक्षी है कि भारतवासी न केवल ज्ञान को सञ्चित करना जानते थे, बल्कि उसे आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने की भी अद्भुत क्षमता रखते थे। ब्राह्मी, खरोष्ठी, शारदा जैसी लिपियाँ भारत की प्राचीन धरोहर हैं, जिन्होंने एशिया की अनेक भाषाओं और लिपियों को प्रभावित किया। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय लिपियों का विकास केवल भाषायी नहीं, अपितु सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय विकास की अमूल्य धरोहर है। इनका संरक्षण और अध्ययन हमारी ऐतिहासिक चेतना को जीवित रखने के लिए आवश्यक है।